Impact Factor 3.025

ISSN 2349-638x

Refereed And Indexed Journal

AAYUSHI INTERNATIONAL INTERDISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL (AIIRJ)

UGC Approved Monthly Journal

VOL-IV ISSUE-XII Dec. 2017

Address
- Vikram Nagar, Boudhi Chouk, Latur.
- Tq. Latur, Dis. Latur 413512 (MS.)
- (+91) 9922455749, (+91) 8999250451

Email
- aiirjpramod@gmail.com
- aayushijournal@gmail.com

Website
- www.aiirjournal.com

CHIEF EDITOR – PRAMOD PRAKASHRAO TANDALE

आदिवासी कवियों के काव्य में व्यक्त विद्रोह

डॉ.पुष्पलता अग्रवाल,
(हिंदी विभाग)
सहयोगी प्राध्यापक, शोध निर्देशक,
दयानंद कला महाविद्यालय, लातूर.

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात छः दशक बीत जाने के बाद भी इस देश में यदि कोई समुदाय अशिक्षित, शोÂöत, उपेक्षित Ÿö£öö विस्थापित जीवन व्यतीत कर रहा है तो वह है - आदिवासी समाज। घने जंग»öö, पहाड़ों में रहने वाला यह समुदाय प्रत्येक प्रकार की सुविधाओं से वंचित, प्रगति से कोसों दूर, अपमानित एवं लांछित जीवन व्यतीत करने के लिए विवश एवं लाचार है। मुख्यधारा में उन्हें लाने के लिए जितने प्रयास सरकार के द्‌वारा किए जाने चाहिए उतने होते हुए दिखाई नहीं दे रहे हैं। परिणामतः उन्हें मूलभूत आवश्यकताएँ भी नहीं मिल पा रही हैं। गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करना उसके जीवन का कटु सत्य है। अपने ही जल, जंगल और जमीन से उन्हें बेदखल किया जा रहा है। यह अतिशयोक्ति नहीं कि, **"वर्तमान समय ´ö यह आदिवासी समाज अपने अस्तित्व और अस्मिता के संकट की लड़ाई लड़ रहा है तथा अनंत शोषण, दमन और उत्पीड़न का शिकार रहा है।"**[1]

लेकिन †²ö युगों से चले आ रहे मौन को आदिवासी समाज ने तोड़ा है। साहित्य द्‌वारा अपने संघर्षमय जीवन, यातना एवं विस्थापना के दर्द की वे अभिव्यÛक्त करने लगे हैं। ¾ööÃÿö¾ö ´ö **"आदिवासी साहित्य वह साहित्य है जिसमें गिरिकन्दराओं में रहने ¾öö»ö, अन्याय को सहने वाले, जिसने सदियों तक कठोर समाज व्यवस्था के कारण आजीवन वनवास सहा, उनकी मुक्ति का साहित्य है।"**[2]

जिन स्थितियों से यह समाज गुजर रहा है उसी भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति कवियों ने काव्य में की Æ… †ö×¤¾ööÃößß कवियों में निर्मला पुतुल, भुजंग मेश्रा´ö, रमणिका गुप्ता, शंकरलाल मीणा, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो रोज केरकेट्टा, वाहरू सोनवणे, सरिता सिंह बडाईक, डॉ. रामदयाल मुंडा आदि का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने कविता द्‌वारा आदिवासी समाज के विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। आज तक आदिवासी अपने शोषण का मूक दर्शक बना रहा है। महाजन, ठेकेदार, दलाल, दिकू, नवाब या मैदानी लोग सभी उनके जंगलों और औरतों को लूटते रहे हैं। उनके रोजगार के साधन छिनते ¸Æ Æ। लेकिन अब काव्य में इन स्थितियों के विरूद्‌ध स्वर सुनाई देने लगे हैं। सभ्य समाज द्‌वारा इनके दुःखों एवं तकलिफों को सम-ने का केवल –ूठा दावा किया जाता है। सच्ची सहानुभूति आदिवासी समाज के प्रति इनमें कभी नहीं रही। फलतः सभ्य समाज द्‌वारा जिस प्रकार का बर्ताव इनके प्रति होता है कहीं-न-कहीं यही इनकी वेदना का कारण है। इसी संदर्भ में वाहरू सोनवणे 'स्टेज' कविता में कहते हैं-

"†ö¸¡ "¾ö" Ãटेज पर खड़े हो / हमारा दुःख / Æ´ö Æß ²öÿööÿö ¸Æ / "हमारा दुःख / अपना ही रहा / कभी उनका हुआ ही नहीं…" / हमारी संकाएँ / Æ´ö ²ö›²ö›ö‹ / कान देकर 'वे' सुनते रहे / और निःश्वास छोड़ा / †ö¸¡ हमारे कान पकड़कर / Æ´ö ही धमकाया / माफी माँगो नहीं तो……"[3]

इन पंक्तियों द्‌वारा आदिवासियों का इतिहास हमारे सामने शब्द-चित्र के रूप में उपस्थित हो जाता है। प्रकृति आदिवासियों की सहचरी रही है। लेकिन आज उसे प्रकृति से बेदखल किया जा रहा है। पेड़ो, जंगलों को उजाड़ा जा रहा है निजी स्वार्थ के लिए। विकास और सुधार के नाम पर प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। प्रकृति ने मानव को क्या कुछ नहीं दिया, लेकिन मानव उसके विनाश का कारण बनता जा रहा है। प्रकृति का नाश कहीं-न-कहीं मानव का विनाश ही ह… इसलिए आनेवाले खतरों से Ãöövधान करते हुए आदिवासी कवियित्री ग्रेस कुजूर 'Æ समय के पहरेदारों!' कविता में कहती हैं -

इसीलिए फिर कहती हूँ / न छेड़ो प्रकृति को / अन्यथा यही प्रकृति / एक दिन / मांगेगी / Æ´öÃö / Ÿö´öÃö / अपनी तरूणाई का / एक-एक क्षण / और करेगी / भयंकर …… बगावत / †ö¸¡ Ÿö²ö / न तुम होंगे / न हम होंगे।"[4]

क़ÆÛ-न-कहीं इन कवियों में ऱ्हास होते जंगलों, नदियों, पर्वतों को बचाने की तड़प दिखाई देती है। यह हकीकत है कि आदिवासी समाज अपने श्रम के बल पर सदैव आत्मनिर्भर रहा है। वह कभी प्रकृति का साथी बना, तो कभी उसके प्रकोप को सहा लेकिन साथ-साथ गतिशील रहा। जब इसे अपनी ही मि™ी और उसकी गंध से दूर किया गया तो बेरोजगारी को –ेला, समय-समय ¯Ö¸ü †ÃÖ³य, पिछड़ा हुआ तथा अशिष्ट जैसे शब्दों द्वारा उसे कमतर बतलाया जाता रहा। जिसके विकास की योजनाएँ तो अनेक बनाई गई पर केवल कागज के पन्नों पर। चाहकर भी वे 'विकास' से जुड़ नहीं पाए बल्कि जीवन और अधिक अभावग्ÃÖŸÖÖ †Öî¸ü विषमताओं के जंगलों में भटकने के लिए मजबूर होता गया। अपनी इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति इन शब्दों में वे करते हैं-

हम चाहते रहे संतुलन /
तुम करते रहे असंतुलित /
तोड़ते रहे एकता, मिटाते रहे /
हमारी पहचान /
खü¤ü›ü़ते रहे हमारे ही जंगलों से हमें /
उजाड़ते रहे विकास के नाम पर हमारी ही बस्तियाँ /
²ÖÃÖÖने के नाम पर Šü»ÖŸÖ ¸üÆêü ÆüÖ×£ÖµÖÖë ¯Ö¸ü /
†²Ö ŸÖ´Ö •ÖÖ†Ö /
हम कुछ नहीं बता सकते तुम्हें।"[5]

आज विस्थापन का जो दर्द आदिवासी समाज –ेल रहा है उसका एकमात्र कारण नदियों पर बनाया जाने वाला बाँध नहीं है। विकास के नाम पर पूँजी निवेश, औद्योगिकीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का स्वार्थ आदि के कारण भी आदिवासी अपनी जड़ो और अपनी संस्कृति से बेदखल किए जा ¸üÆêü Æïü… उनकी ही जमीन कोü सस्ते दामों पर खरीदकर देशी विदेशी कंपनियों को देना तथा आदिवासियों को उचित मुआवजे के बदले भीख अन्यथा गोलियों की सौगात देना जैसी कितनी ही घटनाएँ हमें सोचने पर वि¾Ö¿Ö करती हैं। इसीलिए उन्हें लगता है कि आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन को बचाने के लिए फिर एक बार बिरसा मुण्डा को जन्म लेना होगा। अपने अधिकारों की लड़ाई लड़नी होगी, आवाज उठानी होगी। कवियित्री निर्मला पुतुल की मंशा इन पंक्तियों में व्यक्त हुई हैं -

"´Ö “ÖÖÆüŸÖß ÆüÑ /
मेरे शब्दों की जमीन से /
उगे कई-कई बिरसा मुण्डा /
“ÖÖÆüŸÖß Æü´Ö /
नगाड़े की तरह बजे मेरे शब्द /
और लोग निकल पडे /
अपने-अपने घरों से सड़कों पर।"[6]

स्पष्ट है कि आदिवासी अपने विस्थापन और सभ्यता से दूर रखे जाने के षड़यंत्र को सम–ा रहा है और इसीलिए अपने समाज को केवल आग्ñह ही नहीं करना चाहता तो उन्हें चेतनशील भी बनाना चाहता है क्योंकि वस्तुस्थि×त यह है कि उनकी भलमानसता तथा अशिक्षñा का फायदा सदियों से उठाया जाता रहा है। उन्हें विकास के –ूठे आश्वासन दिए जाते हैं, दलाल, सरकार †Öî¸ü ‡ÃÖ लोग उन्हें खत्म करना चाहते हैं। जिस प्रकार की धोखाधड़ी उनके साथ की जाती है उसका भी चित्रण कविताओं में किया है। यही कारण है कि आज भी आदिवासी समाज उन्हीं हालातों में जी रहा है जैसे वे पहले थे। लक्ष्मण सिंह कावड़े उनकी स्थितियों की यथार्थ अभिव्यक्ति करते हैं –

"सदियाँ बीत गई,
विकास के नाम पर /
आदिवासी। उपेक्षित जीवन जी रहे /
²ÖßÆü›ü '†²Ö–ंमाड़' के जंगलों में। भूखे और नंगे आज भी।"[7]

आज आदिवासियों के सामने सबसे बड़ा संकट - पहचान मिटाने का है। उनकी संस्कृति और भाषा को मिटाने का षड़यंत्र किया जा रहा है। इसीलिए आदिवासी समाज बुद्धिजीवि वर्ग तथा साहित्यकार समाज को Ãïग×ŠŸÖ कर अपनी अस्मिता और संस्कृति को बचाने की भरसक कोशिश कर रहे हैं। आदिवासी कवि चिंताग्रस्त है, वह आदिवासी समाज को जगानÖ "ÖÖÆŸÖÖ Æ… ¾ÖÆ ´ÖÆÃÖÃÖ कर रहा है कि किस प्रकार का रवैया आदिवासी समाज के प्रति है। चिंता उसकी मानव के प्रति है। महादेव टोप्पो '¡Öसदी' कविता में इसी का बयान करते हैं-

"इस देश में पैदा होने का / मतलब क्या है / जनाते हो मेरे भाई? नहीं ? इस देश में पैदा होने का / ´ÖŸÖ»Ö²Ö Æ- / आदमी का जातियों में बट जाना / और गलती से तुम अगर हो गए पैदा / जंगल में / तो तुम कहलाओगे / †Ö×¤¾ÖÖÃÖß-वनवासी-गिरिजन / वगैरह-वगैरह / आदमी तो कम से कम / कहलाओगे नहीं ही।"[8]

लेकिन अब स्थितियों में परिवर्तन हुआ है। जैसे - जैसे उनमें ׿शक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ, वे बहुत कुछ उस इतिहास से परिचित होने लगे हैं जिनकी अभी तक उन्हें जानकारी भी नहीं थी। **"क्रांतिकारी परिवर्तनवादी आंदोलनों के परिणाम स्वरूप आदिवासियों को अपने अस्तित्व और अधिकारों का अहसास हुआ है। जिससे हाशिए के जीवन में एक महॅवपूर्ण क्रांतिकारी बदलाव आता हुआ दिखाई दे रहा है।"**[9]

फलतः अब वे इस गौरवशाली गाथा को जान चुके हैं कि केवल –ाँसी की रानी ही नहीं आदिवासी समाज में 'सिनगी दई' जैसी वीरांगना भी थी जिन्होंने अपने साहस के बलबूते पर विदेशियों से टक्कर ली थी। आज वही 'सिंनगी ¤‡' †Ö×¤¾ÖÖÃÖß ´Ö×Æ»ÖÖ†Ö के शौर्य का प्रतीक बन गई है। आदिवासी कवियित्री ग्रेस कुजूर उसी से प्रेरणा लेकर आदिवासी समान में प्राण फूँकती हुई कहती है –

"और अगर / अब भी तुम्हारे हाथों की / अंगुलिया £Ö¸£Ö¸Ö‡ / तो जान लो / मैं बनूंगी एक बार और / 'सिनगी ¤‡'/ ²ÖÖधूंगी फेटा / और कसेगी फिर से / 'बेतरा' की गांठ / नहीं छुपेगी अब / किसी 'ग्वालिन' की कोई साठ-गांठ / ÃÖ"Ö!! / ²ÖÆŸÖ •Öºþ¸ŸÖ Æ –ारखंड में / फिर एक बार / एक जबरदस्त / जनी शिकार।"[10]

स्पष्ट है कि ŸÖय कर लिया है कि विद्रोह करना ही होगा। महादेव टोप्पो के अनुसार जंगल का कवि अब चुप नहीं रह सकता। प्रत्यंचा पर कलम उसे चढ़ानी ही होगी। और कलम को अपनी ताकत बनाना होगा और स्वयं ग£ों का निर्माण करना होगा ताकि कोई आदिवासियों को इतिहास के ग्रंथों में न तो हाशिए पर ढकेल पाए और न ही उससे बाहर कर पाए तात्पर्य यह कि विरोध में आवाज उठाने के लिए अब तैयार रहना जरूरी है। सदियों से जिस तरह आदिवासियों को दमित एवं शोषित किया जाता रहा। संवेदनशील कवि का हृदय व्यि£ÖŸÖ है यह सब देखकर। इसलिए महादेव टोप्पो पुनः कहते हैं –

"हम हैं जगंल के वासी / ‡ÃÖ×»Ö‹ ¸Æ गए / किसी 'ढुŠ' की तरह / बराबर उजाड़े जाते रहने के / ²ÖÖ¾Ö•Öã¤ / ‡ÃÖ जंगल में / ‡ÃÖ ¯ÖŠÖ¸ ´Ö / उन दोपाया जोकों से लड़ते हुए / जो चूसते नहीं / सिर्फ हमारे शरीर का रक्त / "ÖÃÖ »ÖŸÖ Æ Æ´ÖÖ¸ खेŸÖ-खलिहान / हमारी भाषा संस्कृति और / इतिहास का भी रक्त!"[11]

इस देश की यह कितनी ²Öड़ी बिडंबना है कि मानव होने के नाते मानवीयता का गुण हममें से धीरे - ¬ÖÖ¸ »Ö¯ÖŸÖ ÆÖŸÖÖ •ÖÖ ¸ÆÖ है। इस देश का नागरिक होने के नाते जो इसके अधिकार हैं वे उसे हम देना नहीं चाहते। केवल कहने भर के लिए हम उसे इस देश का आरक्षित नागरिक कह देते हैं। लेकिन अधिकारों की मांग होते ही तुरंत आदिवासियों को अलगाववादी घोषित कर दिया जाता है। दिन दहाड़े राह चलते भीड़ भरी सड़क पर इनकी हत्या कर दी जाती है लेकिन कहीं कोई हलचल नहà ÆÖŸÖß - न अखबारों में न मीडिया में। अनेक उदाहरण हमारे सामने है जहाँ तथाकथित सभ्य समाज द्वारा आदिवासी महिलाओं ¯Ö¸ अत्याचार किए गए यथा - नन्दाबाई, सुनीता टुडू मुर्मु, गुवाहाटी की सं£Öल युवती इसके प्रमाण हैं। शिक्षा से वंचित रखने के लिए रचे गए षड़यंत्र हमारी आँखों के सामने है। आश्चर्य है कि मीडिया भी आदिवासियों पर होनेवाले अत्याचारों की खबरों को देने से परहेज करती है। यह कैसी विडंबना है कि, **"Ã¾ÖŸÖÓ¡Ö ³ÖÖ¸ŸÖ में बसने वाले सैकड़ों जनजातीय समाजों तथा समूहों के दलितों को वस्तुतः अपनी सामाजिक पहचान तक मयस्सर नहीं है उनकी समस्याओं का निराकरण तो दूर की बात है, उनका संवैधानिक अस्तित्व तक खत्म क¸ दिया गया है।"**[12] जिससे उनके अस्तित्व पर ही संकट मंडराने लगा है। आदिवासी साहित्य में कवियों द्वारा इन विसंगतियों के

विरोध में जनजागृति की गई है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आदिवासी साहित्य मनुष्य के पक्ष में प्रतिपक्ष की भूमिका निभा रहा है। उसकी परिधि भले ही मर्यादित हो पर वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। और उसका लक्ष्य एकमात्र आदिवासियों की पीड़ा वेदना, यातना, ×¾Ö¦ÖÆ, संघर्ष तथा विस्थापन के दर्द को ही अभिव्यक्त करना नहीं है तो इसके साथ - साथ समाज के हर व्यक्ति को उसका जन्मसिद्ध मौलिक अधिकार नागरिकता और आत्मसम्मान दिलाने का भी है।

संदर्भ ग्रंथÃÖ“Öß:-

1. समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श - ÃÖ. >Ö. ×¿Ö¾ÖÖ•Öß ¤¾Ö¸, डॉ. मधु खराटे - भूमिका से
2. हिंदी साहित्य में युगीन बोध - ÃÖ. >Ö. ¿Ö»Ö•ÖÖ ³ÖÖ¸«Ö•Ö, ¯Ö. 93.
3. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी - ÃÖ. ¸मणिका गुप्ता, पृ. १०१.
4. आदिवासी केंन्द्रित हिंदी साहित्य - सं. डॉ. उषाकीर्ति राणावत, डॉ. सतीश पाण्डेय, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, पृ. २४.
5. समकालीन हिंदी उपन्यासों में आ×¤¾ÖÖÃÖß ×¾Ö´Ö¿Ö - ÃÖ. >Ö. ×¿Ö¾ÖÖ•Öß ¤¾Ö¸, डॉ. मधु खराटे, पृ. २४.
6. आदिवासी साहित्य विविध आयाम - सं. डॉ. रमेश सम्भाजी कुरे, डॉ. मालती धोंडोपंत शिंदे, प्राचार्य प्रवीण अनंतराव Ø¿Ö¤, ¯Ö. 67.
7. †Ö×¤¾ÖÖÃÖी केंन्द्रित हिंदी साहित्य - सं. डॉ. उषाकीर्ति राणावत, डॉ. सतीश पाण्डेय, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, पृ. १९७.
8. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी - सं. डॉ. स्मरणिका गुप्ता, पृ. ४९.
9. आदिवासी साहित्य विविध आयाम - सं. डॉ. रमेश सम्भाजी कुरे, डॉ. मालती धोंडोपंत शिंदे, प्राचार्य प्रवीण अनंतराव Ø¿Ö¤ - अपनीबात ...... ÃÖ
10. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी - सं. रमणिका गुप्तÖ, ¯Ö. 23
11. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी - ÃÖ. रमणिका गुप्तÖ, ¯Ö. 49
12. आदिवासी साहित्य विविध आयाम - सं. डॉ. रमेश सम्भाजी कुरे, डॉ. मालती धोंडोपंत शिंदे, प्राचार्य प्रवीण अनंतराव Ø¿Ö¤, ¯Ö. 20

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com